

कहानी

अन्तिम इच्छा बदीउज़्ज़माँ

दोपहर का खाना खाकर मैं बाहर के कमरे में तख्त पर लेटा सोने की कोशिश कर रहा हूँ। दो बार नींद आकर टूट चुकी है। एक बार कुत्तों के भौंकने की आवांज से और दूसरी बार गली में बच्चों के शोर मचाने के कारण। अब फिर सोने की कोशिश कर रहा हूँ। पलकें कुछ बोझिल होने लगी हैं। लगता है, नींद जल्दी ही मुझे अपने काबू में कर लेगी। हर तरफ गहरी खामोशी है। केवल दीवार पर लगी घड़ी की टिक-टिक इस खामोशी को हल्के-से तोड़ती है। लेकिन यह आवांज कानों को नागवार नहीं लगती। नींद ने फिर मुझे आ दबोचा है। एकाएक मेरी आंखें फिर खुल जाती हैं। कहीं आसपास से रोने की आवांज आ रही है। नींद का मोह मुझे इस आवांज में दिलचस्पी लेने से रोकता है। कोई रोता है तो रोने दो। मुझे क्या? मैं अपने दिमांग से इस आवांज को, जो लगातार मेरे कानों से टकरा रही है, निकाल फेंकने की कोशिश करता हूँ। लेकिन आवांज निरन्तर बुलन्द होती जा रही है। किसी एक व्यक्ति के रोने की आवांज नहीं लगती। सामूहिक रुदन जैसी आवांज है। बहुत सारे लोग मिलकर रो रहे हैं। जैसे किसी की मौत पर रो रहे हों।

इस आवांज को अहमियत न देना अब मेरे लिए नामुमकिन होता जा रहा है। पास-पड़ोस में जरूर किसी का मौत हो गयी है। जाने कौन मर गया है। कहीं सपाती राज का लडका तो नहीं चल बसा। बीमार था। आज सवेरे डाक्टर देखने आया था। लेकिन वह इतना बीमार तो था नहीं। नहीं, यह बात नहीं हो सकती। मैं आवांज की दिशा का पता लगाने की कोशिश करता हूँ। नहीं, यह आवांज उधर से नहीं आ रही है जिधर सपाती राज का घर है। आवांज छोटी अम्मा के घर की तरफ से आ रही है। लेकिन छोटी अम्मा के घर से रोने की आवांज आने का सवाल नहीं उठता। अभी कुछ देर पहले ही तो गया था वहां। सब कुछ ठीक-ठाक था। तमाम लोग भले-चंगे थे। नहीं, यह आवांज कहीं और से आ रही है। मैं आश्वस्त होकर फिर सोने की कोशिश करने लगता हूँ। लेकिन नींद जैसे विद्रोह करने पर तुली हुई है। रोने की आवांज निरन्तर बुलन्द होती जा रही है। न चाहते हुए भी एक आतंक मुझे घेर लेता है। मौत की डरावनी परछाइयाँ आँखों के सामने नाचने लगती हैं।

एकाएक अम्मा घबरायी हुई कमरे में आती हैं और कहती हैं, "देखो तो क्या बात है? तुम्हारी छोटी अम्मा के यहाँ पिट्टस पड़ी हुई है। खुदा खैर करे। जल्दी जाओ।"

मैं बदहवासी की हालत में छोटी अम्मा के घर की तरफ भागता हूँ। पहुँचकर देखता हूँ कि वहाँ सचमुच कुहराम मचा हुआ है। छोटी अम्मा अपना सिर जमीन पर पटक रही हैं और चीख-चीखकर रो रही हैं।

"हाए! कैसा खौरा लगा दीहिस ई पाकिस्तान हमरे घर को, छीन लीहिस मेरे लाल को।"

घर के तमाम लोग गला फाड़-फाड़कर रो रहे हैं। एकाएक क्या हो गया। कुछ समझ में नहीं आ रहा है। मैं हतप्रभ-सा खड़ा सबको देख हूँ। किसी से कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हो रही है। एकाएक चारपाई पर पड़े एक गुलाबी कांगंज पर मेरी नंजर पड़ती है।

तार को पढ़ते ही सब कुछ मालूम हो जाता है। तार कराची से आया है। कमाल भाई के मरने की सूचना दी गयी है। लेकिन एकाएक यह सब कैसे हो गया। हफ्ते-भर पहले की तो बात है। कमाल भाई का खत आया था। बीमार होते तो जरूर लिखा होता। खत में ऐसा कुछ भी तो नहीं था जिससे उनकी बीमारी का पता चलता। वैसे उनका स्वास्थ्य बहुत दिनों से खराब चल रहा था। दो साल पहले आये थे तो पहचानना मुश्किल हो गया था उनको। पहले जैसा गठा हुआ शरीर नहीं रहा था। बेहद दुबले हो गये थे। गोरा-चिट्टा रंग भी गायब हो चुका था। चेहरा पीला पड़ गया था और गालों में गड्ढे पड़ गये थे। आँखें अन्दर को धंस गयी थीं। लगता ही नहीं था कि यह वही कमाल भाई हैं। कहते थे, "कराची की आबोहवा रास नहीं आयी। भूख बिलकुल नहीं लगती और हाजमा खराब रहता है।"

मुझे अच्छी तरह याद है, कमाल भाई जब पाकिस्तान जा रहे थे तो घर के सब लोगों ने उन्हें रोकने की कोशिश की थी। छोटे अब्बा तब जीवित थे। उनकी बात भी नहीं मानी थी कमाल भाई ने। छोटे अब्बा ने नारंजाज होकर कहा था, "मैं जानता था कि यह मेरी बात नहीं मानेगा। शुरु से ही यह ऐसा है। मा/-बाप को कुछ समझता ही नहीं है।"

कमाल भाई सचमुच बहुत जिद्दी थे। छोटे अब्बा और छोटी अम्मा सिर पटककर रह गये लेकिन वह टस से मस नहीं हुए। उल्टे कहने लगे, "आप लोग भी निकल चलिए। बाद में पछताइएगा।"

छोटी अम्मा बोली थीं, "यह तो हमसे न होगा। अपना घर-बार छोड़कर परदेश जा बसैं।"

कमाल भाई की शादी हुए पांच-छह महीने ही हुए थे। अपनी नई-नवेली दुलहन को लेकर वह पाकिस्तान चले गये थे।

कमाल भाई इस तरह अचानक ही चल बसेंगे, इसकी कल्पना भी नहीं की थी हम लोगों ने।

रात काफी बीत चुकी है। आसपास के वातावरण पर बहुत गहरा सन्नाटा छाया हुआ है। रह-रहकर छोटी अम्मा के रोने की आवांज सन्नाटे को तोड़ जाती है। कभी कोई कुत्ता बड़े ही डरावने स्वर में रोने लगता है जिससे ंफिंजा और भी भयावह हो जाता है। मन बहुत खिन्न हो गया है। सोने की कोशिश करता हूं। लेकिन नींद कहीं दूर भाग गयी है। जब भी आँखें बन्द करके सोने की कोशिश करता हूं तो कमाल भाई की मुखाकृति सामने आकर मन को विचलित कर देती है। बहुत-सी बातें याद आ रही हैं। पर दिमाग किसी एक बिन्दु पर टिक नहीं रहा है। स्मृतियाँ किसी जुलूस की तरह गुजर रही हैं।

सामने चारपाई पर अम्मा भी करवटें बदल रही हैं। उन्हें भी नींद नहीं आ रही है। वह भी शायद कमाल भाई के बारे में सोच रही हैं।

"कमाल गरीब जवानी मौत मरा। वह भी परदेस में।" अम्मा की आवांज मुझे सुनाई देती है। मैं कोई जवाब नहीं देता ॰आँआँ।

कमाल भाई के जाने कितने चेहरे मेरी आँखों के सामने झिलमिल रहे हैं। बारह-तेरह साल की उम्र के लड़के का चेहरा। बेहद शरीर और चंचल। अठारह-उन्नीस साल के नवयुवक का चेहरा, भाषणकला में दक्ष और गाने में माहिर। स्मृतियाँ किसी क्रम से नहीं आ रही हैं। बड़े ही बेतरतीब, क्रमविहीन ढंग से कमाल भाई की बातें याद आ रही हैं।

कमाल भाई मुझसे चार-पाँच साल ही तो बड़े थे। बचपन में उनसे मैं बहुत डरता था। क्या मजाल जो उनके हुक्म के खिलाफ कुछ कर सकूँ। लेकिन भीतर-ही-भीतर जलता भी कुछ कम नहीं था। बड़ी ईर्ष्या होती थी उन्हें देखकर। गोरा-चिट्ठा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बा-चौड़ा शरीर। बड़ा ही भव्य और आकर्षक व्यक्तित्व था उनका। उनके सामने मैं तो बिलकुल मरियल दिखाई देता था। आये दिन वह मुझे पीटते रहते थे। बड़ा क्रोध आता था मुझे। लेकिन उनपर कोई वश नहीं चलता था मेरा। अम्मा से आकर शिकायत करता तो वह भी कुढ़कर रह जातीं। अम्मा भी कमाल भाई का कुछ बिगाड़ नहीं सकती थीं। अब्बा से कुछ कहने की हिम्मत उनमें भी नहीं थी। अम्मा जानती थीं कि अब्बा कमाल भाई को कितना चाहते हैं। वह किसीसे कमाल भाई के खिलाफ कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे। अम्मा को यह सब बहुत बुरा लगता था। पर वह खून का घूंट पीकर रह जातीं। दिल की भड़ास अकसर मेरे सामने जरूर निकाल लेती थीं। कहतीं, "अल्लाह मियां समझिए बाबू। हम कुछ ना बोले हैं। अल्लाह तो सब देखे हैं ना। कैसी जलंतही है यह सलीम की बहू। ऐसी गोतनी अल्लाह मियां हमारे भाग में ही लिखिन था। जैसी माए वैसा बेटा।"

अम्मा और छोटी अम्मा में जैसे जन्म-जन्मान्तर की दुश्मनी थी। बस चलता तो एक-दूसरी को कच्चा चबा जाती। अम्मा अब्बा के डर से बहुत कम बोल पाती थीं। अब्बा का गुस्सा ही कुछ ऐसा था कि किसीको कुछ कहने की हिम्मत नहीं होती थी। उनके आते ही घर में सब लोगों को जैसे सांप सूंघ जाता था। पर छोटी अम्मा पर छोटी अब्बा का कुछ जोर नहीं चलता था। अम्मा कहती थीं, "जादू कर दीहिन है कमाल के नन्हियाल वाले सलीम पर। एक मजाल जो कुछ कहे सके बीवी से।"

अम्मा मन-ही-मन कमाल भाई से बहुत जलती थीं। एक बार जब कमाल भाई स्कूल के इम्तिहान में फेल हो गये थे और मैं पास हो गया था तो अम्मा ने कहा था, "अल्लाह मियां घमंड तोड़ दीहिन ना। जो सबको गिरावे उनको अल्लाह गिरावे।"

और सच पूछिए तो मुझे बेहद खुशी हुई थी। अपने पास होने से ज्यादा इसकी खुशी थी कि कमाल भाई फेल हो गये। मेरे ईर्ष्याभाव को इस घटना से बड़ी तृप्ति मिली थी। छोटी अम्मा के यहां उस रोज सब लोग बहुत उदास थे और कमाल भाई ने तो कई रोज तक अपनी शकल तक नहीं दिखाई थी। अब्बा को भी बहुत दुःख हुआ था और मेरे पास होने पर उन्हें जितना खुश होना चाहिए था उतना खुश वह नहीं हुए थे। अम्मा ने यह सब देखकर चुपके से कहा था, "खुश कैसे हों। लाडला भतीजा जो फेल हो गया है। इनका बस चले तो बेटे को भी फेल करा दें।"

अम्मा की ये बातें उस समय मुझे बहुत अच्छी लगती थीं। कमाल भाई के व्यवहार और उनके लाड़-प्यार के कारण मैं अन्दर-ही-अन्दर सुलगता रहता था। अब्बा कमाल भाई को जितना चाहते हैं उतना मुझे नहीं चाहते। यह सोचकर मैं ईर्ष्या से पागल हो उठता था।

ये पुरानी भूली-बिसरी बातें इस समय अनायास ही याद आ रही हैं। तब ये कितनी महत्त्वपूर्ण लगती थी! वक्त ने अब इन्हें कितना गैर-अहम बना दिया है! कितनी हैरत होती है अपने-आप पर कि बचपन में कितनी फिजूल की बातों को लेकर मैं ईर्ष्याभाव से पीड़ित रहता था।

अब्बा का जब देहान्त हुआ था तो अम्मा के धीरज का बाँध जैसे एकाएक टूट गया था। छोटी अम्मा को देखते ही अम्मा ने कहा था, "लो, अब तो कलेजा ठंडा हो गया ना तुमरा।" और छोटी अम्मा को जैसे सांप सूंघ गया था। एक शब्द भी तो न निकला था उनके मुँह से।

और जब छोटे अब्बा की मैयत पड़ी हुई थी तो छोटी अम्मा ने भी यही सब कहा था अम्मा उसी तरह चुप रही थीं जिस तरह छोटी अम्मा चुप रह गयी थीं।

और आज भी ऐसा ही हुआ था। अम्मा को देखते ही छोटी अम्मा फट पड़ी थीं। "लो अब तो तुमरा कलेजा ठंडा हुआ ना। बहुत खटकता था ना मेरा लाल तुमरे आँख में।" अम्मा खामोशी से यह सब सुनती रही थीं।

"दो बरस हुए जब आया था कमाल। कहता था, 'बड़ी अम्मा, यहाँ से जाने को जी नहीं चाहता। पर क्या करें मजबूरी है।' दो महीने रहा था बेचारा। कौन कहिस था हुआ जाने को। नसीबजल्ला कहीं का। सब कहते रह गये, न जाओ। किसीका कहना ना मानिस। बेचारी करमजल्ली बीबी और दो छोटे-छोटे बच्चों का का हाल होहिए।" अम्मा के शब्द मेरे कानों में पहुँच रहे हैं। शायद अम्मा मन-ही-मन पछतावा महसूस कर रही हैं। शायद मेरा खयाल गलत है। अम्मा कोई पछतावा महसूस नहीं कर रही हैं। जैसे कमाल भाई से उनका जलना भी उसी तरह ठीक था जिस तरह उनकी मौत पर दुखी होना। दोनों स्थितियाँ शायद अपनी-अपनी जगह पर सहज थीं।

कमाल भाई पिछली बार जाने लगे थे तो मैं भी गया था उन्हें स्टेशन तक छोड़ने। भाभी-बच्चों को वेटिंग रूम में बिठाकर हम दोनों असिस्टेंट स्टेशन मास्टर के दफ्तर में चले गये थे। कमाल भाई को रेलवे पास में एन्ट्री करवानी थी। असिस्टेंट स्टेशन मास्टर सिंधी शरणार्थी था। पास देखते ही चौंक गया, "आप कराची में रहते हैं क्या?" उसने पूछा।

"जी हाँ।" कमाल भाई बोले।

"हम भी कराची से आया है। हमारा नाम लालवानी है। कराची स्टेशन के बाहर निकलते ही दाईं तरफ टी-स्टॉल है ना। रफीक को हमारा सलाम बोलना। कहना लालवानी बहुत याद करता है। हम दोनों हैदराबाद का है। उसे बहुत-बहुत सलाम कहना। और कराची स्टेशन पर अब्दुस्सत्तार टी.सी. है। उसने कहना लालवानी मिला था। बहुत याद करता है।"

बहुत देर तक वह कमाल भाई से कराची के बारे में पूछता रहा। "बन्दर रोड़ पर रायल रेस्तराँ था। वह है या नहीं? डी.सी. ऑफिस में मिस्टर लतीफ हेड क्लर्क थे। अभी हैं या रिटायर हो गया। बहुत अच्छा आदमी था। हमारा बड़ा मदद करता था। मिल जाए तो हमारा सलाम बोलना।" इसी तरह से अनगिनत ऊटपटाँग सवाल करता रहा।

कमाल भाई उसके सवालों के जवाब में हां-हूँ करते रहे। फिर चुपके से हम दोनों वहाँ से खिसक गये।

"चलो जरा स्टेशन के बाहर चाय पी आएं।" कमाल भाई बोले। मिट्टी के कुल्हड़ वाली चाय पीते हुए कमाल भाई ने कहा था :

"जानते हो कराची में ऐसी चाय पीने को जी तरस जाता है। ऐसी सौंधी चाय कराची में कहाँ नसीब। गया मैं मुझे दो जगह की चाय सबसे ज्यादा पसन्द थी। स्टेशन पर इस दुकान की चाय और शहर में कोतवाली के पास बासुदेव टी-स्टॉल की चाय। इस बार बासुदेव टी-स्टॉल बन्द देखा। लगता है वह कहीं बाहर चला गया।"

बासुदेव टी-स्टॉल बहुत दिनों से बन्द पड़ा था। मैंने यह जानने की कभी कोशिश नहीं की थी कि बासुदेव शहर में है भी या नहीं।

फिर कमाल भाई बोले थे, "जानते हो ख्वाजा, पाकिस्तान जाकर मैंने संख्त गलती की। अब्बा का कहा मान लेता तो अच्छा रहता। मेरी हालत धोबी के गधे की हो गयी है। न घर का ना घाट का। सोचता हूँ मुल्क का बँटवारा न होता तो अच्छा था।"

मैं कमाल भाई की बातें खामोशी से सुनता जा रहा था। वह बूढ़ों जैसी बातें कर रहे थे। अब यह सोचने से क्या फायदा। मुल्क का बँटवारा हो चुका था और यह भी एक हकीकत थी कि कमाल भाई पाकिस्तान चले गये थे। सांप जब निकल गया है तो लकीर को पीटते रहने का क्या लाभ।

जब गाड़ी प्लेटफार्म पर सरकने लगी तो मैंने देखा कि लालवानी तेंजी से भागता हुआ कमाल भाई के डिब्बे की तरफ आ रहा है।

प्लेटफार्म पर सरकती हुई ट्रेन के साथ लालवानी कुछ दूर तक दौड़ता रहा और चीख-चीखकर कहता रहा, "मेरा सलाम जरूर बोलना रफीक टी-स्टॉल वाले को और अब्दुस्सतार को और मिस्टर लतीफ को। कहना लालवानी बहुत याद करता है तुम सबको। हमारा नाम याद रहेगा ना। लालवानी यानी रेड..." ट्रेन प्लेटफार्म से आगे निकल चुकी थी। कुछ दूर तक कमाल भाई का हिलता हुआ हाथ दिखाई देता रहा। फिर सारी ट्रेन एक लाल बिन्दु में सिमटकर आँखों के सामने चमकती रही। और कुछ देर के बाद यह लाल बिन्दु भी अन्धकार में विलीन हो गया। मैंने चारों तरफ एक नजर डाली। प्लेटफार्म बिल्कुल वीरान दिखाई दे रहा था। एक तरफ लालवानी खड़ा हा/फ रहा था। मैंने सोचा था, यह जिन्दगी भी अजीब चीज है। लालवानी, जिसकी रग-रग में कराची बसा हुआ है, गया की

ंजमीन पर खड़ा हांफ रहा है और कमाल भाई, जो गया की हवाओं के लिए तरसते हैं, कराची में आजीवन रहने पर मजबूर हैं।

उस रोज स्टेशन पर कमाल भाई की बातें सुनकर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ था। कमाल भाई की विचारधारा तो शुरू से ही मुस्लिम लीगी थी। 'पाकिस्तान लेकर रहेंगे' और 'कायदे आजम जिन्दाबाद' के नारे लगाते मैं उन्हें देख चुका था। मुहम्मद अली जिन्ना जब गया आये थे और बहुत बड़ा जुलूस निकाला गया था तो आगे-आगे रहने वालों में कमाल भाई भी थे। यह उन दिनों की बात है जब मुस्लिम लीग का असर तेजी से फैल रहा था और राजनीति के स्तर पर हिन्दू और मुसलमान बड़ी हद तक बंट चुके थे। पर दैनिक जीवन के स्तर पर सब कुछ पहले की तरह चल रहा था। राजनीति की सतह पर हिन्दुओं को मुसलमानों से शिकायतें थीं और मुसलमानों को हिन्दुओं से। पर रोजमर्रा की जिन्दगी में पूरा सम्पर्क बना हुआ था। सोचता हूं तो यह सारा झगड़ा मुझे अम्मा और छोटी अम्मा के झगड़े जैसे लगता है। तमाम शिकवे-शिकायतें और उतार-चढ़ाव के बावजूद अम्मा और छोटी अम्मा के सम्बन्धों में कभी ऐसी दरार नहीं पड़ी कि दोनों एक-दूसरे से बिल्कुल अलग हो जाएं।

हम लोगों के रिश्ते के एक भाई थे जो विचारधारा की दृष्टि से कौम-परस्त मुसलमान कहे जा सकते थे। यह राजनीति में सक्रिय भाग तो नहीं लेते थे लेकिन राजनीतिक मामलों और सवालों में बड़ी गहरी दिलचस्पी लेते थे। यह मुस्लिम लीग और पाकिस्तान की मांग के कट्टर विरोधी थे। उम्र में मुझसे और कमाल भाई से बड़े थे। काँग्रेस, गांधीजी और मौलाना अबुल कलाम आजाद के बड़े भक्त थे। कमाल भाई से उनकी अकसर बड़ी जोरदार बहसें हुआ करती थीं। इनका नाम तो अहमद इमाम था लेकिन बहुत-से लोग इन्हें गा/धीजी कहकर पुकारते थे। औरों की देखा-देखी हम लोग भी इन्हें गांधी भाई कहने लगे थे।

एक बार हमारे मुहल्ले में मुस्लिम लीग का कोई जलसा हुआ था। इसमें कमाल भाई ने इकबाल का मशहूर तराना 'चीनी खबर हमारा हिन्दुस्तां हमारा, मुस्लिम हैं हम वतन है सारा जहां हमारा' गाकर सुनाया था। कमाल भाई ने बड़ा अच्छा गला पाया था और उनके गाने की सब लोगों ने बहुत तारीफ की थी। जलसा खत्म होने पर कमाल भाई हमारे यहां आये तो गांधी भाई भी मौजूद थे। गांधी भाई ने शायद कमाल भाई को छेड़ने की खातिर कहा था :

"क्यों भाई कमाल, तुम्हें कोई और नज्म गाने को नहीं मिली जो इकबाल का यह तराना गाने लगे। इकबाल फलसफी हो सकते हैं लेकिन इनसान के दर्द को वह नहीं समझते।"

"अजी आप क्या समझेंगे इकबाल की शायरी को।"

कमाल भाई ने नाराज होकर जवाब दिया था। बात आयी-गयी हो गयी थी। उस समय इकबाल की शायरी को समझने की योग्यता मुझमें नहीं थी। पर आगे चलकर जब मैं इकबाल की कविताओं और देश की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों को समझने के काबिल हुआ तो मैं भी उसी नतीजे पर पहुंचा जिस नतीजे पर गांधी भाई बहुत पहले पहुंच चुके थे। उस रोज गया स्टेशन पर कमाल भाई की बातें सुनकर मुझे यही लगा कि गांधी भाई ने इकबाल के बारे में ठीक ही कहा था। कमाल भाई खुद को इकबाल के सांचे में ढला हुआ मुसलमान समझते थे। तभी तो गया से अपना रिश्ता तोड़ते हुए उन्हें जरा भी हिचक नहीं हुई। पर क्या यह रिश्ता टूट सका? उनका उदास चेहरा इस बात का साक्षी था कि गया से उनकी रूह का जो रिश्ता है वह कभी भी टूट सकता।

गांधी भाई ने एक बार कहा था, "इकबाल का सारा नजरिया दर असल इनसान-विरोधी है। हालांकि बजाहिर ऐसा दिखाई नहीं देता। लेकिन उनका 'मर्दे मोमिन' नीतशे के अतिमानव (सुपर मैन) के अलावा कुछ और नहीं है। नीतशे ने हिटलर को जन्म दिया था। देखना, इकबाल का 'मर्दे मोमिन' भी बड़ी तबाही लाएगा।"

गांधी भाई और कमाल भाई में अकसर लम्बी बहसें होती थीं और कभी-कभी तो इनमें कटुता भी आ जाती थी। बहस में बहुत-से दूसरे लोग भी शामिल हो जाते थे। बिचारे गांधी भाई हमेशा अकेले पड़ जाते थे। मुस्लिम लीग का विष इतना फैल चुका था कि गिनती के लोग ही इससे मुक्त रह सके थे। जहा/ कमाल भाई के पक्ष में दस-दस, बारह-बारह आदमी होते वहां गांधी भाई को अकेले ही इतने सारे वार सहने पड़ते।

देश-विभाजन से कोई साल-डेढ़ साल पहले की बात है। टाउन हाल में कौम-परस्त मुसलमानों का कोई जलसा हो रहा था। बाहर से भी कुछ नेता आये हुए थे। मुस्लिम लीग ने जलसे में हड़बोंग करने के लिए अपने वालंटियर भेज दिये थे। इनमें कमाल भाई भी थे। कमाल भाई और गांधी भाई की नोक-झोंक सुनते रहने के कारण राजनीति में मेरी भी कुछ रुचि हो गयी थी। मैं भी इस जलसे में गया था। जैसे ही जलसे की कार्रवाई शुरू हुई लीग के वालंटियरों ने हड़बोंग मचाना शुरू कर दिया। गांधी भाई और दूसरे लोगों ने उन्हें रोकने की कोशिश की। तू-तू, मैं-मैं से बढ़कर बात हाथापाई तक पहुंच गयी। इसी बीच किसीने बिजली का मेन स्विच ऑफ कर दिया और जलसा दंगे में बदल गया। गांधी भाई को लीग के वालंटियरों ने बुरी तरह पीटा था। वह अधमरे-से हो गये थे। कई हफ्ते बिस्तर पर पड़े रो रहे थे। कमाल भाई ने कह था, "गद्दारों का यही अंजाम होता है। कौम से गद्दारी करेंगे तो क्या कौम फूलों के हार पहनाएगी।" यह मात्र संयोग की बात थी कि गांधी भाई की जान बच गयी थी। लीग के वालंटियरों ने तो अपनी समझ से उन्हें जान से मार डाला था।

कमाल भाई और गांधी भाई की बहस आम तौर पर एक ही दायरे में घूमती थी। कमाल भाई कहते, "मुसलमानों की संस्कृति, भाषा, पहनावा, खानपान, धर्म, रीति-रिवाज सब कुछ हिन्दुओं से अलग हैं। वे अलग कौम हैं। अखंड भारत में उनकी संस्कृति सुरक्षित नहीं रह सकती।"

गांधी भाई कहा करते थे, "धर्म को छोड़कर हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई अन्तर नहीं है। जो अन्तर दिखाई देता है वह केवल बाहरी है। इससे अधिक अन्तर तो खुद मुसलमानों के विभिन्न वर्गों और हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों में दिखाई दे जाएगा। क्या तुमने कभी गौर किया है कि आम मुसलमान की जिन्दगी जन्म से लेकर मौत तक जिन रीति-रिवाजों के दायरे में घूमती है वे आम हिन्दू से जरा भी अलग नहीं हैं? जन्मोत्सव, छठी की रस्म, शादी-ब्याह के गीत, यहां तक कि मरने के बाद बहुत-से संस्कार बिल्कुल वैसे ही हैं जैसे कि हिन्दुओं के। दो कौम का नंजरिया बहुत बड़ा जाल है जिसमें भोले-भाले मुसलमानों को फांसने की कोशिश की जा रही है। इसके नतीजे बहुत खतरनाक होंगे।"

गांधी भाई के तर्कों में बड़ा वजन था। मैं जो साम्प्रदायिकता और मुस्लिम लीगी विचारधारा के विष से स्वयं को मुक्त रख सका तो इसका कारण शायद गांधी भाई के यही ंख्यालात थे जो मुझे सही लगते थे। आश्चर्य है कि कमाल भाई और उन जैसे हजारों-लाखों मुसलमानों को इनमें कोई सचाई नंजर नहीं आती थी। लेकिन यह कैसी विडम्बना थी कि गांधी भाई जैसे इनसान, जो साम्प्रदायिकता का कट्टर विरोधी था, जो मुस्लिम फिरकापस्तों के हाथों एक बार मरते-मरते बचा था, जिसने साम्प्रदायिकता की तेज आंधी में भी साम्प्रदायिक एकता का दीया अपने कमजोर हाथों में पकड़ रखा था वह देश-विभाजन के बाद एक साम्प्रदायिक दंगे में किसी हिन्दू के हाथों मार डाला गया था।

कमाल भाई के बारे में सोचते हुए आज ये सब बातें मुझे याद आ रही हैं। स्मृतियों का जुलूस एक बिन्दु पर पहुंचकर रुक-सा गया है। गया रेलवे स्टेशन पर पाकिस्तान को जानेवाली स्पेशल ट्रेन खचाखच भरी हुई है। जितने आदमी अन्दर है उससे कहीं ज्यादा प्लेटफार्म पर हैं। जानेवालों में कमाल भाई भी हैं। हंजारों आदमी इन्हें विदा करने आये हैं। इन्होंने अपनी इच्छा से उस जमीन कोहमेशा के लिए छोड़ने का फैसला किया है जिसे छोड़ने की शायद इन्होंने कुछ दिन पहले कल्पना भी नहीं की थी। ये सब स्वेच्छा से जा रहे हैं लेकिन इनके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही हैं। इन्हें अपने निर्णय पर कोई पछतावा, कोई दुख, कोई ग्लानि नहीं है। इन्हें पूरा विश्वास है कि इनका फैसला सही है। गांधी भाई भी स्टेशन पर मौजूद हैं। ट्रेन प्लेटफार्म पर सरकने लगती है। हंजारों आँखें ट्रेन को जाते देखती रहती हैं और जब तक ट्रेन दृष्टि से ओझल नहीं हो जाती वे उसका पीछा करती रहती हैं। और तब तक अजीब-सी उदासी और वीरानी का एहसास सब हावी होने लगता है जैसे जानेवालों से वे हमेशा-हमेशा के लिए कट चुके हैं। गांधी भाई फूट-फूटकर रोने लगते हैं। सिसकियों में डूबे हुए उनके शब्द आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं, "इन्हें वतन कभी नसीब नहीं होगा। बनी इसराइल की तरह ये हमेशा भटकते रहेंगे और अपनी मिट्टी और हवाओं के लिए तरसते रहेंगे।" कमाल भाई के शब्द मेरे कानों में गूंजने लगते हैं। उन्होंने कहा था, "दिन तो रोजी के झमेले में किसी तरह बीत जाता है। लेकिन रात के सन्नाटे में एक अजीब पुरअसरार वीरानी का एहसास छाने लगता है। एक अजीब अस्पष्ट-सा ंख्याल दिल और दिमाग पर हावी होने लगता है, जैसे फिर वहीं लौट जाना है जहाँ से आये थे। लेकिन कब और कैसे? इन सवालों के जवाब नहीं मिलते।"

रिवाज के मुताबिक चौथे दिन 'कुल' हुआ। उसी बैठक में जहाँ बरसों पहले छोटे अब्बा का 'कुल' हुआ था कमाल भाई का 'कुल' भी हुआ। अगरबत्तियाँ जलायी गयीं। कुरान शरीफ की तिलावत हुई, फिर मीलाद हुआ। मरने वाले की रूह की शान्ति के लिए दुआएं मांगी गयीं। फिर गरीबों को खाना खिलाया गया। दोपहर होते-होते 'कुल' की सारी गहमागहमी खत्म हो गयी। मैं बैठक में अकेला बैठा जिन्दगी के उतार-चढ़ाव के बारे में सोचता रहा। वर्षों पहले जब छोटे अब्बा मरे थे या उनसे भी पहले जब अब्बा का इन्तकाल हुआ था तो उनके 'कुल' में भी यही सब कुछ हुआ था। पर इसके अलावा भी कुछ हुआ था जो कमाल भाई के 'कुल' में हम लोग नहीं कर सकते थे। हम सब 'कुल' के दिन शाम को अगरबत्ती और फूल की चादर लेकर अब्बा और छोटे अब्बा के मजार पर गये थे और फातिहा पढ़कर लौट आये थे। पर कमाल भाई के कब्र पर हम लोग कहाँ जा सकते थे। वह तो हजारों मील दूर थे। शायद यह दूरी इससे भी ज्यादा थी-ऐसी दूरी जो मीलों में नहीं नापी जा सकती। मैं भावुकता की तरंगों में बहकर सोचने लगा, कमाल भाई ने जिन्दगी की आंखिरी घड़ियों में जाने अपने घर को, अपने बचपन को, गया के गली-कूचों को, अपनी मां को, अपने भाई-बहनों को किस-किस तरह याद किया होगा? कौन कह सकता है, उनके दिमाग में यादों के कितने दीये जले-बुझे होंगे। या शायद उन्हें इन बातों की याद तक नहीं आयी हो। मौत की खौफनाक परछाइयों ने इन स्मृतियों को भी निगल लिया हो।

उसी रोज शाम को डाक से भाभी का खत आया। लिखा था-"उन्हें जैसे मालूम हो गया था कि अब नहीं बचेंगे। जब से बीमार पड़े थे यही कहते थे-'मुझे गया ले चलो अम्मा के पास। मैं कराची में रेगिस्तान में मरना नहीं चाहता। मुझे वहीं दफन करना फलगू नदी के उस पार कब्रिस्तान में जहाँ अब्बा का कब्र है और बड़े अब्बा की।'"

एकाएक मुझे लगा जैसे वंक्त ने अपना दामन समेट लिया है और मौलवी साहब की कड़कदार आवाज मेरे कानों से टकरा रही है :

'हजरत यूसुफ ने अपनी जिन्दगी का बड़ा हिस्सा मिस्र में ही गुजारा और जब उनकी उम्र एक सौ साल की पहुंची तो उनका इन्तकाल हो गया। हजरत यूसुफ ने इन्तकाल से पहले अपने खानदान वालों से यह वायदा कराया कि वे उन्हें मिस्र की जमीन में दफन नहीं करेंगे, बल्कि जब खुदा का यह वायदा पूरा हो कि बनी इसराइल दुबारा फिलिस्तीन यानी अपने पुरखों की जमीन में वापस हों तो उनकी हड्डियाँ वे अपने साथ लेते जाएंगे और वहीं मिट्टी के सुपुर्द कर देंगे। चुनांचे उन्होंने वायदा किया और हजरत यूसुफ का इन्तकाल हो गया तो उनको ममी करके ताबूत में हिंफांजत से रख दिया और जब हसरत मूसा के जमाने में बनी इसराइल मिस्र से निकले तो इस ताबूत को भी अपने साथ लेते हुए गये और पुरखों की जमीन में ले जाकर इसे दफन कर दिया।'

'हजरत यूसुफ ने ऐसा क्यों कहा मौलवी साहब?'' कमाल भाई ने पूछा था।

'हजरत यूसुफ आंखिर को इनसान थे भाई। मिस्र में उन्होंने बड़ी शान से हुकूमत की। इंजत, शहरत, दौलत! ऐसी कौन-सी चीज थी जो उन्हें वहाँ नहीं मिली। लेकिन वतन फिर भी वतन है। मिट्टी खींचता है भाई। तुम अभी इसे नहीं समझोगे', मौलवी साहब बोले थे।

तब कौन जानता था कि एक जमाना ऐसा भी आएगा जब कमाल भाई को अपनी सम्बन्धियों से वही कुछ कहना पड़ेगा जो हजरत यूसुफ ने बनी इसराइल से कहा था। पर बनी इसराइल से तो खुदा ने वायदा किया था कि वे पुरखों की जमीन में फिर वापस होंगे। कमाल भाई ने तो खुदा ने ऐसा वायदा नहीं किया था। और तभी मुझे लगता है कि कमाल भाई बहुत लम्बे अर्से तक एक बहुत बड़े झूठ के सहारे जीते रहे थे। लेकिन उनकी जिन्दगी में ऐसा समय भी आया था जब उन्होंने इस झूठ को पहचानना शुरू कर दिया था और अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में तो उन्होंने झूठ से इस लबादे को बिलकुल उतार फेंका था और उस सचाई को पूरी तरह से महसूस कर लिया था जिसे गांधी भाई बहुत पहले ही जान चुके थे। और तब कमाल भाई का चेहरा कोई एक चेहरा नहीं रहता। वह हजारों-लाखों चेहरों में बदलने लगता है। चेहरे जो न हिन्दू हैं न मुसलमान-महज इनसान के चेहरे जो अपनी जड़ों से कटकर बहुत करुण बन गये हैं और जिन्हें निहित स्वार्थों के षडयन्त्र ने आजीवन नरक में झोंक दिया है।



[शीर्ष पर जाएँ](#)